BAOU Education for All
॥ चैतन्य ॥ CHAITANYA
ISSN : 2582 2802
A Refereed and Peer - Reviewed International e-Journal of Humanities and Social Sciences
by School of Humanities and Social Sciences
Dr. Babasaheb Ambedkar Open University, Ahmedabad

राष्ट्र-निर्माण में तिलक के स्वराज्य दर्शन की भूमिका

डॉ० मनीष कुमार पाण्डेय
विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रो०, राजनीति विज्ञान विभाग
श्री रावतपुरा सरकार यूनिवर्सिटी, रायपुर, छ० ग०
Mob.:- 7905981918, 9935001770
Email Id.:- manishpandey4737@gmail.com

सारांश

सनातन हिन्दू सांस्कृतिक दर्शन के निष्णात महान लोकमान्य तिलक का **"स्वराज्य दर्शन"** तत्कालीन देश-काल, परिवेश और परिस्थितियों से प्रभावित था; क्योंकि एक निष्काम कर्मयोगी होने के कारण भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रथम श्रेणी के नेत्रित्वकर्ताओं में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। अतः उनका स्वराज्य दर्शन कोरे काल्पनिक आदर्श के स्थान पर उदात्त यथार्थवादी धरातल पर अवलम्बित है । सनातन हिन्दू सांस्कृतिक दर्शन तथा पाश्चात्य राष्ट्रवादी और प्रजातान्त्रिक विचारों से प्रभावित लोकमान्य के स्वराज्य का मूल 'अद्वैतवाद के तत्वमीमांसा' में वर्णित व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार और मानवीय समता की भावना से अभिप्रेरित है। भारत की परम्परागत ऊर्जा को आधुनिक राजनीतिक मूल्यों के साथ पिरो कर अभिजन और आमजन के मध्य सेतु निर्माता महानायक तिलक ने आध्यात्मिक भारतीयता को तात्कालिक सन्दर्भों के विराट अर्थ से जोड़ने के लिए परम्परागत प्रतीकों, नायकों और मिथकों का प्रयोग कर 'स्वराज्य' के महायज्ञ में जनऊर्जा को प्रज्ज्वलित करने की अद्भुत क्षमता प्रदर्शित की। **राष्ट्रीय आन्दोलन** को नया जीवन प्रदान करने के लिए तिलक ने **'गणपति उत्सव'** और **'शिवाजी उत्सव'** प्रारम्भ किए, साथ ही राष्ट्रवादियों का बाइबिल कहे जाने वाले **'गीता रहस्य'** की रचना की। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में लोकमान्य तिलक ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीयों को 'स्वतन्त्रता की पवित्र भावना' के लिए प्रेरित किया। स्वराज्य में आध्यात्मिक अनिवार्यता निहित है, जो व्यक्ति को आन्तरिक आध्यात्मिक स्वतन्त्रता तथा विचारपरक आनन्द का अनुभव कराती है। राजनीतिक क्षेत्र में तिलक के विचारों का मूल बिन्दु - स्वतन्त्रता की अवधारणा थी, स्वतंत्रता की यह अवधारणा एक ओर तो वेदान्त दर्शन पर और दूसरी ओर मिल, बर्क, ग्रीन व विल्सन के पाश्चात्य

राजनितिक विचारों पर आधारित थी। श्री तिलक के अनुसार "स्वतन्त्रता ही व्यक्ति की आत्मा का जीवन है" । उनके शब्दों में, "सृजनात्मकता की स्वायत्त शक्ति को ही स्वतन्त्रता कहा जा सकता है"; इसी 'स्वतन्त्रता' को श्री तिलक ने भारत के संदर्भ में 'स्वराज्य' कहा। सन् 1916 के कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में तिलक ने भारतीयों को स्वराज्य का मंत्र देते हुए कहा- "स्वराज्य भारतवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार है।" इस प्रकार वर्तमान भारतीय परिवेश में लोकमान्य के 'स्वराज्य' की अवधारणा को अत्यंत विस्तीर्ण सन्दर्भों में प्रचारित किये जाने की आवश्यकता है, ताकि आधुनिक युवा पीढ़ी भौतिक सुखों के मकड़जाल से निकल कर अपनी स्वतंत्र सृजनात्मक शक्ति का राष्ट्रोत्थान में प्रयोग कर सके।

संकेत शब्द: - स्वराज्य, लोकतान्त्रिक, अद्वैतवाद, सृजनात्मकता, विस्तीर्ण, राष्ट्रोत्थान।

प्रस्तावना

लोकमान्य तिलक का राजनीतिक दर्शन **'स्वराज्य'** शब्द पर ही केन्द्रित था, जो एक पुरातन वैदिक शब्द है। स्वराज्य का अर्थ है- 'प्रत्येक व्यक्ति का राज्य' यानी ऐसा राज्य जो प्रत्येक को अपना लगे। स्वराज्य अर्थ है- अन्तिम सत्ता जनता के हाथ में हो। इसका आशय मात्र 'विदेशी सत्ता से मुक्ति' ही नहीं है वरन 'उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था' या 'लोकतान्त्रिक व्यवस्था' की स्थापना का ही दूसरा नाम स्वराज्य है, जो सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक प्रत्येक परिक्षेत्र में अनिवार्यतः स्थापित हो। स्वराज्य व्यक्ति का 'प्राकृतिक अधिकार' है। तिलक ने 'स्वराज्य' शब्द को व्यापक रूप में हिन्दू शास्त्रों से प्राप्त किया, वे इसे मात्र एक अधिकार ही नहीं वरन धर्म भी मानते थे। उन्होंने 'स्वराज्य' को विशुद्ध नैतिक और आध्यात्मिक के साथ ही राजनीतिक अर्थ में भी ग्रहण किया था। राजनीतिक दृष्टि से इसका अर्थ – 'होमरूल' अर्थात अपने घर का शासन अपने हाथ में हो, नैतिक दृष्टि से यह 'आत्म नियन्त्रण' की पूर्णता का द्योतक है, जो व्यक्ति में कर्त्तव्य परायणता की भावना जागृत करने के लिए नितान्त आवश्यक है। स्वराज्य में आध्यात्मिक अनिवार्यता निहित है, जो व्यक्ति को आन्तरिक आध्यात्मिक स्वतन्त्रता तथा विचारपरक आनन्द का अनुभव कराती है। राजनीतिक क्षेत्र में तिलक के विचारों का मूल बिन्दु - स्वतन्त्रता की अवधारणा थी, स्वतंत्रता की यह अवधारणा एक ओर तो वेदान्त दर्शन पर और दूसरी ओर मिल, बर्क, ग्रीन व विल्सन के पाश्चात्य राजनितिक विचारों पर आधारित थी। श्री तिलक के अनुसार "स्वतन्त्रता ही व्यक्ति की आत्मा का जीवन है" । उनके शब्दों में, "सृजनात्मकता की स्वायत्त शक्ति को ही स्वतन्त्रता कहा जा सकता है"; इसी 'स्वतन्त्रता' को श्री तिलक ने भारत के संदर्भ में 'स्वराज्य' कहा।ब्रिटिश सत्ता

के विरुद्ध होने से वैलेंटाइन चिरोल ने उन्हें **"भारतीय अशांति का जनक"**[1] और पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें "भारतीय क्रांति के जनक" के रूप में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। परंतु डॉ० आर. सी. मजमूदार ने लिखा है कि, "अपने परिश्रम तथा अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप बालगंगाधर तिलक लोकमान्य कहलाए जाने लगे और उनकी एक देवता के समान पूजा होने लगी। वह जहाँ कहीं भी जाते के उनका राजकीय स्वागत और सम्मान किया जाता था।"

स्वराज्य की संकल्पना

तिलक उन नेताओं में से थे जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में **'राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के अधिकार'** का प्रथमतः प्रबल समर्थन किया था। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों और लोगों की आकांक्षाओं के बीच आधारभूत संघर्ष को पहचान लिया और स्पष्ट किया कि इस संघर्ष को तब तक हल नहीं किया जा सकता जब तक कि भारतीय अपना भाग्य खुद नहीं निर्धारित करते हैं और देश के मामलों का स्वयं संचालन करते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि ऐसे आदर्श को लोगों के बीच देशभक्ति और आत्मसम्मान की प्रभावोत्पादक भावनाओं को बढ़ावा देकर ही प्राप्त किया जा सकता है। श्री तिलक ने घोषित किया कि –

"स्वराज्य का वास्तविक अर्थ है कि सत्ता जनता में केन्द्रित हो । इसका अर्थ है कि इस व्यवस्था में अधिकारी शक्तिशाली नहीं होंगे वरन राज्य की संप्रभुता शक्तिशाली होगी ।"[2]

तिलक के स्वराज की अवधारणा के सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और आध्यात्मिक जैसे विभिन्न आधार थे। तिलक न केवल एक उग्र राष्ट्रवादी थे, बल्कि एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ भी थे, अतः स्वराज प्राप्त करने के लिए उनकी धारणा और भूमिका-प्रदर्शन के गहन विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकालता है कि उनके हृदय में स्वराज से स्पष्ट अर्थ था- **विदेशी शासन से स्वतंत्रता**।

वैदिक अद्वैत की तत्त्वमीमांसा में वर्णित व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार और मानवीय समानता की राजनीतिक संकल्पना को लोकमान्य ने अपने स्वराज्य का केंद्रीय विषय बनाया। इसीलिए श्री तिलक व्यक्ति की व्यक्तिगत, राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता को आध्यात्मिक स्वतंत्रता की दिव्या अनुभूति से जोड़ना चाहते थे । एक व्याख्यान में उन्होंने कहा –

---

[1] इनामदार, एन०आर०, 1993, पोलिटिकल थाट एंड लीडरशिप ऑफ़ लोकमान्य तिलक, न्यू दिल्ली: कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, पृष्ठ- 271.

[2] बाल गंगाधर तिलकः हिज राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, 1922, मद्रास: गणेश एण्ड क० (तृतीय संस्करण)पृष्ठ- 338 .

"स्वराज्य क्या है? अपनी आत्मा पर स्थिर और निर्भर रहने का नाम स्वराज्य है ।स्वराज्य से मेरा विश्वास है की लौकिक स्वाधीनता पर ही आध्यात्मिक स्वाधीनता निर्भर है।"[3] आगे उन्होंने कहा कि, **"व्यक्ति की जीवन आत्मा उसकी स्वतंत्रता है जो वेदांत के अनुसार ईश्वर से पृथक नहीं हो सकती वरन उसके साथ तादाम्य स्थापित करती है ।यह स्वतंत्रता ऐसा सिद्धांत है जो कभी नष्ट हो ही नहीं सकता।"**[4]

वस्तुतः श्री तिलक के अनुसार स्वतंत्रता की इच्छा व्यक्ति की प्राकृतिक प्रवृत्ति है और इसे प्राप्त करने के लिए परिश्रम करना उसका स्वयंसिद्ध अधिकार है । किसी भी व्यक्ति को यह कदापि सिद्ध करने की आवश्यकता नही है कि वह स्वतंत्रता प्राप्त करने योग्य है भले ही वह परतंत्र राष्ट्र का नागरिक ही क्यों न हो । उन्होने स्वाधीनता को ही एकमात्र ऐसा तत्व बतलाया है जो मनुष्य में स्वतंत्रता के लिए उपयुक्त गुणों का विकास करती है । लोकमान्य तिलक ने गीता रहस्य में प्रतिवादित किया है -

"वेदान्त शास्त्र का निश्चय है कि सच्चा स्वतंत्र न हो बुद्धि का है न तो मन का है यह तो शुद्ध बुद्धि अर्थात आत्मा का है । यह स्वातंल्य न तो आत्मा को कोई दे सकता है नहीं छीन सकता है । नित्य, बुद्ध, शुद्ध, निर्मल और स्वतंत्र परमात्मा का अंश रुप जीवात्मा जब सांसारिक उपाधि के बंधन में पड़ जाता है तब वह स्वतंत्र ऋति से कहे अनुसार बुद्धि और मन में प्रेरणा किया करता है क्योंकि उसमें कर्म सृष्टि के प्रेरणा की प्रबलता हो जाती है।" [5]

पाश्चात्य विचारक ग्रीन और कांट ने श्री तिलक के विचारों पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है, इसीलिए उन्होने व्यक्ति के आत्मिक स्वतंत्रता की तुलना राष्ट्र की स्वतंत्रता से किया है । उनके अनुसार सामाजिक संदर्भ में स्वतंत्रता स्वधर्म का अनुपा लन सामाजिक परिवेश के साथ तादाम्य स्थापित करना और आत्म साक्षात्कार की ओर अग्रसर होना है । स्वराज्य का तात्पर्य 'जनमानस को, प्राकृतिक अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में, एक ऐसी सत्ता का हस्तांतरण है जो राज्य के शासन और प्रशासन को नियंत्रित करती है । जबकि वेदान्तशास्त्र में स्वराज्य वह आध्यात्मिक अवस्था है जिसमें मनुष्य का सीधे परमात्मा से साक्षात्कार होता है और वह सम्पूर्ण लौकिक बंधनों से मुक्त हो जाता है।

---

[3] सरवटे एवं भंडारी , तिलक दर्शन , पृष्ठ 146-147.

[4] वर्मा, वी० पी०, 2003, लोकमान्य तिलक : जीवन और दर्शन, आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, पंचम संस्करण, पृष्ठ 447-448.

[5] तिलक, बी० जी०,1998, गीता रहस्य, नयी दिल्ली: डायमंड बुक्स पब्लिकेशन, (अट्ठाइसवाँ संस्करण) पृ0 183-85

लोकमान्य तिलक के स्वराज्य का मूल व्यक्ति की राजनीतिक स्वतंत्रता हैं। उनके लिए राजनीतिक स्वतंत्रता मनुष्य के नैतिक अस्तित्व के लिए अनिवार्य पूर्व-स्थिति है, जिसके बिना वह अधोगति को प्राप्त होता है। जिस प्रकार से एक व्यक्ति के लिए मोक्ष ही अन्तिम लक्ष्य है ठीक उसी प्रकार स्वाधीनता किसी राष्ट्र की आत्मा का अन्तिम लक्ष्य है। उन्होने कानपुर जनसभा के एक ओजस्वी भाषण में कहा -

"राष्ट्र के नैतिक भौतिक और बौद्धिक क्षेत्र में होने वाली प्रगति उसी स्वतंत्रता पर निर्भर है जिससे हमें वंचित रखा गया है।"[6]

उन्होनें लॉक के समान व्यक्ति के उन प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन किया है जो मानवीय मूल्यों और नैतिकता पर आधारित है। उन्होने राष्ट्र के आत्मोदय के लिए भी राजनैतिक स्वतंत्रता की मांग की है। नागर भाषण में उन्होने स्पष्ट कहा था -

"हम एक राष्ट्र हैं इस संसार में हमें एक ही उत्तरदायित्व निभाना है। हमें वे अधिकार मिलने चाहिए जो मनुष्य को प्रकृति से प्राप्त हैं हमें स्वतंत्रता चाहिए। हम अपने मामलों को निपटा सकें यह अधिकार हमारे हाथ में आना चाहिए।"[7]

उन्होनें स्पष्ट किया कि राजनीतिक दृष्टि से स्वराज्य अर्थात् स्वशासन वह तत्व है जिसके बिना राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास असंभव है। तिलक ने स्पष्ट किया कि स्वराज्य स्वआश्रित और स्वचालित जीवन है, इस लोक और परलोक में भी स्वराज्य है। इसीलिए स्वराज्य का संदेश घर-घर तक पहुँचाने के लिए उन्होने एक प्रभावशाली कार्यक्रम बनाया इसके लिए उन्होने होमरूल लीग की स्थापना की, स्वराज्य की सुस्पष्ट और सरलतम व्याख्या की तथा स्वराज्य की आवश्यकता के औचित्य को सिद्ध करते हुए भारत के लिए अविलम्ब स्वराज्य की मॉग की। इसी क्रम में लखनऊ कांग्रेस 1916 ई0 में उन्होने एक ऐसा ऐतिहासिक कालजयी मंत्र दिया जो भविष्य काल में भारतीय स्वाधीनता पर आने वाली विपत्तियों के समय भी भारतीयों में संचित उर्जा को उद्वेलित कर उन्हें कर्तव्य-पथ पर अग्रसर कर देगा। उन्होने सिंह के समान गर्जना करते हुए कहा - **'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।'**

---

[6] 1 जनवरी 1917, कानपुर जनसभा को संबोधन (बाल गंगाधर तिलकः हिज राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, 1922, मद्रास: गणेश एण्ड क० (तृतीय संस्करण) पृष्ठ- 339 .

[7] नागर भाषण, 1 जून 1916 ई0 (बाल गंगाधर तिलकः हिज राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, 1922, मद्रास: गणेश एण्ड क० (तृतीय संस्करण)पृष्ठ- 175.)

लोकमान्य तिलक ने कहा कि स्वराज्य की प्राप्ति में भारतीय राष्ट्रवाद की महान् विजय होगी क्योंकि यह नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी आधारों पर न्यायोचित है। लोकमान्य तिलक का स्वराज्य दर्शन मूलरुप से उनकी अमरकृति 'गीता रहस्य' के मूल दर्शन निष्काम कर्म (कर्मयोग) से अनुप्राणित है; जो स्वराज्य दर्शन का आधारभूत तत्व है। जिसके अनुसार स्वराज्य एक राजनैतिक आवश्यकता मात्र नही है बल्कि यह मनुष्य के लिए एक नैतिक अपरिहार्यता है। निश्चय ही यह मानव के नैतिक अस्तित्व की आवश्यक मॉग है। प्लेटो के समान ही तिलक ने व्यक्ति के प्रकृति के अनुरूप उसे स्वधर्म के अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता की मॉग की है; जहॉ पर प्लेटो ने इसे मानव प्रकृति के अनुकूल कार्य विशेषीकरण की बाध्यता का रुप दिया है जिसमें आदर्शावस्था की सुचारुता के लिए कुछ विशिष्ट वर्गो के लिए साम्यवाद का दर्शन सन्निहित दिया है। इसके ठीक विपरीत लोकमान्य ने गीतोक्त आध्यात्मिक स्वतंत्रता की बात की है, जिसमें नैतिक मानवीय मूल्यों के रक्षार्थ मनुष्य को 'लोक- संग्रहार्थ' निष्काम कर्म करना चाहिए। उन्होने स्पष्ट किया है कि सच्ची स्वतंत्रता कोई स्वेच्छा चारिता नही है बल्कि आत्मतत्व में ही विनियमित और संयमित स्वतंत्रता होती है, जो हमारे सामाजिक जीवन के मॉग के अनूकूल राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना से ही प्राप्त हो सकती है, जिसमें मनुष्य स्वधर्मानुकूल आचरण कर सकें और जो लोगों के नैतिक अनुभूतियों अर्थात आत्मा के अनुकूल हो। अभिप्राय स्पष्ट है कि-

"उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था का दूसरा नाम ही स्वराज्य है अर्थात वह माँग स्वराज्य की माँग है जिसमें हम अपने या स्वसंबंधी कार्यो की व्यवस्था अपने हाथ से करने की व्यवस्था चाहेगें।" [8]

एक बार उन्होने लिखा - **"स्वराज्य हमारी समृद्धि की नींव है न कि उसका शिखर।"[9]** अर्थात् वे स्वराज्य की स्थापना चाहते थे ताकि भारतीयों का उत्तरोत्तर सर्वांगिण विकास हो सके। उन्होने बेलगांव (स्वराज्य पर प्रथम 1 मई 1916 ई0) में व्याख्यान देते हुए कहा -

"स्वराज्य की कल्पना उसी समय होती है, जब हम किसी ऐसे राज्य या शासन में हो जिसे हम 'स्व' अर्थात अपना नही कह सके। जब ऐसी स्थिती प्राप्त होती है तभी उसके लिए उद्योग आरम्भ होता है। इस समय आपकी भी स्थिती यहीं है। आपके शासक आपके धर्म, आपकी जाति, यहाँ तक कि आपके

[8] 1मई 1916 ई0 को हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी में भाषण (बाल गंगाधर तिलकः हिज राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, 1922, मद्रास: गणेश एण्ड क० (तृतीय संस्करण)पृ0 11.

[9] वर्मा, वी० पी०, 2003,आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन,पृ0 272.

देश के भी नहीं है । स्वराज्य आन्दोलन इस समझ से किया जा रही है कि इस समय यह राज्य प्रबंध जिनके हाथों में है उनसे लेकर किसी ऐसे हाथों में जाना चाहिए जो लोगों के लिए हितकर हो । घर में कुआँ खुदवाने से लेकर जंगल से लकड़ी और घास काटने तक कलेक्टर को अर्जी देनी पड़ती है अर्थात् बिल्कुल बेकारों और असहायों की स्थिति हो रही है । यह व्यवस्था हमें नही चाहिए इससे अच्छी व्यवस्था हमें चाहिए, और वह अच्छी व्यवस्था स्वराज्य है । दूसरो की व्यवस्था चाहे जितनी ही अच्छी क्यों ना हो तो भी यह बात नही हो सकती कि लोगों को वह व्यवस्था सदा पसन्द ही आये । स्वराज्य का यही तत्व है । अपने संबंध की व्यवस्था अपने हाथ में रखने की माँग ही स्वराज्य की माँग है। पंचतंत्र के 'त्रयाणां धूर्ताना' की तरह आप कहते है कि भारतवासी अभी स्वराज्य के पात्र नहीं है । हम लोग पात्र क्यों नहीं हैं; तुम्हारा यह कहना कि 'तुम्हें हम देना ही चाहते'ठीक है, इसके बदले यह मत कहो कि तुम योग्य नहीं हो।"[10]

तिलक ने 1885 ई0 में पहली बार 'स्वराज' शब्द का प्रयोग किया और उन्होंने **स्वराज शब्द को वैदिक शब्द "स्वराज्यम " से लिया था**।[11] वेदांत में स्वराज शब्द का प्रयोग सर्वोच्च आध्यात्मिकता को इंगित करने के लिए किया गया था, जहां व्यक्ति ने सार्वभौमिक के साथ अपनी पहचान को महसूस किया। व्यक्ति केवल बंधनों से मुक्त नहीं हुआ, बल्कि सृष्टि में अन्य सभी के साथ पूर्ण सामंजस्य स्थापित स्थापित करने में

सफल हो सकता है।[12]

स्वराज की यह वैदिक अवधारणा 'स्वतंत्रता' की पश्चिमी अवधारणा से भिन्न है। स्वराज एक सकारात्मक अवधारणा है जिसका अर्थ है- स्वावलम्बन, आत्मविश्वास, स्वशासन या स्वनियमन। इसप्रकार तिलक के लिए स्वराज राजनीतिक अधिकार भी है और नैतिक आवश्यकता भी । तिलक के लिए राजनीतिक रूप से स्वराज का अर्थ है,-

"शासक और शासित एक देश, धर्म, जाति एवं संस्कृति के हो। दूसरे यह एक अच्छी तरह से शासित राज्य को संदर्भित करता है अर्थात एक संवैधानिक सरकार या विधि का शासन होना चाहिए। ।

---

[10] सरवटे एवं भण्डारी , तिलक दर्शन, पृ0 -153&162

[11]अथल्या, डी.वी.,1921, द लाइफ ऑफ लोकमान्य तिलक (पूना चिपलूनकर) पृ0-304।

[12] कीर, डी0, 1980, लोकमान्य तिलक, बॉम्बे: भगेश्वर भवन प्रकाशन, पृ0-15

तीसरा इसका अर्थ है एक सरकार जो लोक कल्याण की कामना से कार्य करती हो। चौथा, इसका अर्थ है लोगों द्वारा चुनी हुई उत्तरदायी सरकार ।"[13]

एक तरह से उनकी स्वराज की अवधारणा राष्ट्रवादी है। किन्तु तिलक की स्वराज की अवधारणा का नैतिक आधार भी है। आत्म-नियंत्रण और आत्म-साक्षात्कार भी स्वराज की ओर ले जाता है। इसे व्यक्ति द्वारा अपनाए जाने वाले अध्यात्मवाद के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। परंतु व्यक्ति राजनीतिक क्षेत्र में स्वराज के बिना उसके साथ नहीं चल सकता है, दोनों में सहसंबद्ध हैं। तिलक के स्वराज्य पर श्री गोयल ने व्याख्या की है कि,-

"जब तक स्वराज नहीं होगा, धर्मराज्य के अधीन सचेत वैध जीवन, समुदाय का सही क्रम कभी प्राप्त नहीं हो सकता , व्यक्तिगत जीवन की स्थिति नैतिक दृष्टि से लाभदायक नहीं हो सकती , मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप में नहीं रह सकता , और जीवन और सृष्टि के उद्देश्यकी पूर्ति नहीं हो सकती। राजनीतिक समुदाय केवल धर्म को संरक्षित और बढ़ावा देने के लिए अस्तित्व में है , और स्वराज के बिना यह संभव नहीं होगा, इसलिए स्वराज्य व्यक्ति और समुदाय दोनों के लिए एक नैतिक अनिवार्यता है।"[14]

तिलक ने एक सकारात्मक राजनीतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जो भारत के लिए स्व-शासन की अवधारणा या स्वराज के इर्द-गिर्द केंद्रित था। राजनीतिक अर्थों में स्वराज की बात करते हुए उन्होंने कहा कि हमारे समस्याओं का प्रबंधन हमारे हाथ में होने की मांग स्वराज्य की मांग है । सच्चे स्वराज की पहचान के लिए **'स्व'** के अर्थ को ठीक से समझना आवश्यक होगा । तिलक के लिए 'स्वराज' में उपसर्ग 'स्व' का अर्थ केवल 'प्रजा' (आम जन), शासित-राज्य हो सकता है; और इसलिए, उनके अनुसार, **स्वराज का अर्थ जनता और शासित लोगों का शासन** था।[15]

वस्तुतः श्री तिलक ने इस बात को गहन अध्ययन किया था कि विदेशी नौकरशाह प्रत्येक महत्वपूर्ण पदों पर कब्जा जमाए हुए है और यही कारण है कि हमारे अन्दर उत्साह, साहस और आरम्भक गुणों का दिनों-दिन पतन हो रहा है, जो हमारे नैतिक और बौध्दिक पतन का कारण है। फलस्वरुप हमारे आत्मविश्वास में अत्यधिक

---

[13] मोहंती डी. के., 1997, भारतीय राजनीतिक परंपरा: मनु से अम्बेडकर तक, नई दिल्ली: अनमोल पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ0 -201।

[14] गोयल, ओ.पी., 1996, स्टडीज इन मॉडर्न इंडियन पॉलिटिकल थॉट, आगरा: किताब महल प्रकाशन, पृष्ठ-53।

[15] पटेल एस. डी., 2012, भारतीय स्वतंत्रता सेनानी, आनंद, दिल्ली: सार्थ प्रकाशन, पृष्ठ -58।

कमी आयी है और हम हीनभावना के शिकार हुए हैं, जिसका फायदा उठाकर नौकरशाही हमें 'स्वराज्य' के अयोग्य और स्वयं को हमारा शिक्षक सिद्ध करना चाहती है। यही कारण था राष्ट्र निर्माता तिलक भारत के लिए शीघ्रातिशीघ्र स्वाधीनता चाहते थे; तथापि उन्हें भय था कि -

"दासता की अवधि लम्बे समय तक होने के कारण भारतीयों में स्वतंत्रता और स्वाधीनता की भावना, आत्मबल और संघर्ष क्षमता पर निश्चय ही बुरा प्रभाव पड़ा है। परिणामस्वरुप यदि अंग्रेजों ने भारत में सत्ता परित्याग का मन बना भी लिया तो इसमें संदेह नहीं कि भारतीय नवीन शक्ति की दासता स्वीकार करने में हिचकिचायेगे।" [16]

श्री तिलक इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि तत्कालीन आक्रामक साम्राज्यवादी सत्ताओं की गिद्ध दृष्टि भारत पर सदैव से लगी हुयी थी इसीलिए वे अपने सुरक्षात्मक हितों के लिए ब्रिटीश सत्ता से बाह्य संबंध बनाए रखना चाहते थे। उन्होनें 12 जनवरी 1917 ई0 को अकोला भाषण के दौरान कहा -

"भारत की वर्तमान शासन पद्धति संदोष है और बिना स्वराज्य के वह नहीं सुधर सकेगी। यह भारत और इंग्लैंड का संबंध तोड़ता नहीं है। यह दोनों के संबंध को दृढ़ करता है। हमें अपने विशुद्ध स्वार्थ के लिए भी इंग्लैंड की रक्षा चाहिए। आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि वह इंगलैंड का संबंध हीं है तथा इंगलैंड की दी हुयी शिक्षा ही है जिसने आपके हृदय को महत्वाकांक्षाओं से भर दिया है। "[17]

य़द्यपि कि उन्होने नौकरशाही की कटु आलोचना करते हुए उसके चालबाजियों पर तथा साम्राज्यवादी सत्ता की कुटिल प्रवृत्ति पर दृष्टिपात करते हुए कहा -

"कोई भी राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र पर विशुद्ध कल्याणकारी उद्देश्य से कभी भी शासन नहीं करता। राष्ट्रीय हित की सिद्धि के लिए ही साम्राज्य निर्मित और प्रयुक्त होते है। " [18]

इसीलिए श्री तिलक ने भारत का आन्तरिक प्रशासन बुद्धिमान और निर्वाचित भारतीयों के हाथ में दिये जाने की अपील की, ताकि वे साम्राज्यवादी सत्ता के आर्थिक शोषण से बचते हुए अपने हितों का संबर्धन कर सकें।

---

[16] सरवटे एवं भंडारी , तिलक दर्शन , पृष्ठ 101-102.

[17] केलकर, एन०सी०, 1956, समग्र तिलक, खंड IV,(हिंदी अनुवाद- तेंदुलकर,एस०सी०), पूना, पृ.- 923.

[18] केलकर, एन०सी०, 1956, समग्र तिलक, खंड IV,(हिंदी अनुवाद- तेंदुलकर,एस०सी०), पूना, पृ.- 273.

उन्होंने राष्ट्रीय आत्मा की मुक्ति के लिए प्रत्येक भारतीय से अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संवैधानिक तरीके से साम्राज्यवादी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करने की अपील की। उन्होनें पाश्चात्य राजनैतिक दर्शन और ऐतिहासिक दृष्टांतों को प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया कि -

"प्रत्येक राष्ट्र न्याय और स्वतंत्रता दोनों ही से प्रेम करता है, साथ ही वह परिमार्जन के शिखर पर पहुँचने के गर्व की अनुभूति चाहता है, परन्तु पराधीन भारत की कमजोर आर्थिक व्यवस्था के कारण हम इन सुधारों को प्राप्त करने में असमर्थ हैं, और इसका प्रमुख कारण हमारे शासकों में विदेशी-पन का होना है।"[19]

व्यावहारिक देशीपन के लिए तिलक के स्वराज की स्थापना एक नैतिक अनिवार्यता थी । जिसमें विधि, सरकार की संस्थाएं, राजनीतिक समुदाय की शक्ति का उपयोग और व्यवस्था केवल धर्मराज्य के तहत नैतिक हो सकती थी और धर्म तभी शासन कर सकता था जब लोगों के पास स्वराज हो। उन्होंने कहा कि जब तक लोग कानून बनाने और सुधारों को लागू करने के लिए स्वशासन का प्रयोग नहीं करते, तब तक सुधार न केवल अर्थहीन होंगे, बल्कि अलोकतांत्रिक भी होंगे। स्वराज लोकतांत्रिक होना चाहिए। तिलक का मानना था कि सभी प्रगति, राष्ट्रीय उन्नति की सभी आशाएं स्वराज में निहित हैं, स्वराज पर किसी भी वस्तु को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती है। अपने सार्वजनिक संबोधन में उन्होंने कहा कि,-

"यदि हमें स्वराज्य नहीं मिलता है तो देश के लिए किसी भी प्रकार की प्राथमिक या उच्चतर शिक्षा के उपयोगी होने की कोई संभावना नहीं होगी। अगर हमें स्वराज्य मिलता है, तो यह केवल महिला शिक्षा को आगे बढ़ाने या औद्योगिक सुधार या सामाजिक सुधार को सुरक्षित करने के लिए नहीं है। ये सभी स्वराज्य के अंग हैं। सत्ता पहले चाहिए..... ऐसा कोई सवाल नहीं है जो स्वराज्य पर निर्भर न हो.....हम स्वराज्य की मांग करते हैं क्योंकि यह हमारी भविष्य की समृद्धि की नींव है।"[20]

बाल गंगाधर तिलक को आम तौर पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में चरमपंथी समूह के नेता के रूप में प्रशंसित किया गया है। एक उग्रवादी के रूप में लोकमान्य ने अपने तात्कालिक राजनीतिक लक्ष्य के रूप में 'स्वराज'

---

[19] केलकर, एन०सी०, 1956, समग्र तिलक, खंड III,(हिंदी अनुवाद- तेंदुलकर,एस०सी०), पूना, पृ.- 77.

[20] मेहता एन., देओल जे.एस., 2010, प्राचीन और आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचार, जालधर: नई अकादमिक प्रकाशन, पृ. -128-129।

का अनुसरण किया। अपनी मातृभूमि के प्रति उनके प्रेम और भारत के धर्म, संस्कृति और सभ्यता में अटल विश्वास ने उन्हें एक तेजतर्रार देशभक्त और एक श्रेष्ठ राष्ट्रवादी बना दिया। उनका राजनीतिक साधन **'याचना और भिक्षावृत्ति'** नहीं था। लेकिन अन्य चरमपंथियों के विपरीत, तिलक ने अपने राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में किसी निश्चित मॉडल का पालन नहीं किया। दूसरे शब्दों में, उनकी राजनीतिक तकनीक उनके भावनात्मक बंधन और एक भारतीय होने के आत्म-गौरव पर आधारित थी, उसका प्रधान कारण था- वास्तविकता के विश्लेषण के लिए उनकी राजनीतिक अंतर्दृष्टि। उनकी राजनीतिक तकनीक भावनात्मकता और यथार्थवाद पर आधारित थी। इसलिए जब तिलक ने हिंसा से घृणा की, तो उन्होंने अहिंसा का उल्लेख नहीं किया। तिलक ने सहयोग को बढ़ावा देने के साथ ही उत्तरदायित्व पर बल दिया । इस तरह वे गांधी से भिन्न थे जिन्होंने 1920 के बाद अहिंसक सत्याग्रह की स्पष्ट नीति अपनाई। **गाँधी की तुलना में श्री तिलक बड़े राजनीतिक रणनीतिकार थे।**[21]

नरमपंथियों ने अपने राजनीतिक कार्यक्रम को 19वीं सदी के यूरोपीय उदारवाद की राजनीतिक सोच पर आधारित किया था। बंगाल के विभाजन से बहुत पहले नए राष्ट्रवादियों ने माना कि उनका उदारवादी कार्यक्रम अप्रभावी था। नए राष्ट्रवादियों ने लोगों की समझ में आने वाली शब्दावली आधारित सामूहिक राजनीतिक शिक्षा शुरू की। तिलक और राष्ट्रवादियों के लिए स्वराज धर्म था। उनके अपने शब्दों में, अपने लोगों में अपने धर्म का प्रसार करना ही हमारे धर्म के राष्ट्रीय स्वरूप का एक पहलू है, क्योंकि राजनीति को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता है। 'भगवान और हमारा देश अलग नहीं हैं।' संक्षेप में, **'हमारा देश ईश्वर का एक रूप है।'** इस नींव के साथ, राष्ट्रवादियों और **तिलक ने राष्ट्र को प्रभावी, व्यावहारिक और राजनीतिक कार्रवाई के लिए त्रि-आयामी कार्यक्रम प्रस्तुत किया, ये तीन सिद्धांत थे- बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा। मुख्य रूप से यह कार्यक्रम बंगाल में उपयोग के लिए तैयार किया गया था, लेकिन जल्द ही यह पूरे देश का कार्यक्रम बन गया।**[22]

तिलक ने इस बात से इनकार नहीं किया कि ब्रिटिश सरकार ने शांति और कुछ स्वतंत्रता दी थी, लेकिन साथ ही उन्होंने चेतावनी दी कि भारतीय लोगों के अधिकारों और रियायतों की एक सीमा है जो वे लाँघ सकते हैं। 1906 में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में तिलक स्वराज्य को आगे ले जाना चाहते थे, दादाभाई नौरोजी ने

---

[21] मोहंती, डी. के., 1997, भारतीय राजनीतिक परंपरा, मनु से अम्बेडकर तक, नई दिल्ली: अनमोल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पी-211।

[22] मेहता एन., देओल जे.एस., 2010, प्राचीन और आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचार, जालधर: नई अकादमिक प्रकाशन, पृ. -129।

घोषणा की कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य होना चाहिए। तिलक ने बड़े उत्साह के साथ आगे की पंक्ति में रहकर स्वराज की अवधारणा को लोकप्रिय बनाने के लिए एक अभियान शुरू किया। उसने कहा,-

" स्वराज के रूप में हमारे लक्ष्य के रूप में, संगठन को राष्ट्रीय संघर्ष का एक साधन बनाने के लिए मजबूत किया जाना चाहिए। पार्टी को राष्ट्रीय आंदोलन में लोगों को शामिल करने के लिए एक व्यावहारिक कार्यक्रम शुरू करना चाहिए।" और स्वराज, स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के चार सूत्री कार्यक्रम का आग्रह किया। उन्होंने कहा, -

"शिक्षित वर्गों को जनता के बीच काम करना चाहिए। क्या जनता समझती है कि स्वदेशी आंदोलन का क्या मतलब है ? वे ऐसे गूढ़ सिद्धांतों को नहीं समझते हैं जैसे 'प्रतिनिधित्व के बिना कोई कराधान नहीं', प्रशासन में एक बड़ी भागीदारी और स्वशासन । वे समझते हैं कि ग्रामोद्योग समाप्त हो रहे हैं और इन उद्योगों के संरक्षण और पुनरुद्धार की योजना को उनका समर्थन प्राप्त होगा।"

स्वदेशी का अर्थ मूल रूप से स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग और विदेशी वस्तुओं का उपयोग छोड़ना है। स्वदेशी आर्थिक स्वतंत्रता के लिए स्वीकृत साधन था और इसका **उद्देश्य आर्थिक दासता को समाप्त कर आत्मनिर्भरता को प्राप्त करना था** । सामान्यतया यह माना जाता है कि गांधी जी ने सबसे पहले स्वदेशी की बात की थी; परन्तु एक ऐतिहासिक अध्ययन से पता चलता है कि **गांधी से बहुत पहले तिलक ने भारत में स्वदेशी आंदोलन शुरू करने का आह्वान किया था।**[23]

तिलक ने तीन अलग-अलग कारणों से एक राजनीतिक तकनीक के रूप में **बहिष्कार** की अभ्युक्ति की, पहला स्वदेशी आंदोलन के मिशन को पूरा करने के लिए, जो विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के बिना सफल नहीं होगा, दूसरा, दमनकारी नौकरशाही का विरोध करने और लोगों पर कुछ करों का बोझ हटाने के लिए, तीसरा, युद्ध और हिंसक पद्धति के विकल्प के रूप में सेवा करने के लिए जो उन्होंने सोचा था कि अंग्रेजों के खिलाफ सफलतापूर्वक लागू करना संभव नहीं होगा। चौथा, बहिष्कार की तकनीक को लागू करके तिलक ब्रिटिश सरकार के खिलाफ एक जन आंदोलन बनाना चाहते थे। इस प्रकार **बहिष्कार का उपयोग तिलक ने एक आर्थिक अभियान, राजनीतिक राष्ट्रवाद और लोकतांत्रिक हथियार के रूप में किया**। जब ब्रिटिश कपड़े पर लगाए गए सीमा शुल्क को संतुलित करने के लिए भारतीय कपड़े पर उत्पाद शुल्क बढ़ाया गया, तिलक ने नया कर लगाने के लिए ब्रिटिश सरकार की नीति पर हमला किया और भारतीयों से विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने और स्वदेशी कपड़े का प्रयोग करने की अपील की। तिलक ने उन अमेरिकियों का उदाहरण दिया जिन्होंने समुद्र में

[23] मोहंती, डी. के., 1997, भारतीय राजनीतिक परंपरा, मनु से अम्बेडकर तक, नई दिल्ली: अनमोल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पी-212।

चाय के डिब्बे फेंके और ब्रिटिश सरकार को कर देने से इनकार कर दिया। एक राष्ट्रवादी और क्रांतिकारी भावना में तिलक ने कहा, -

"लोगों को इसके लिए लड़ना चाहिए; यदि आप मानव कहलाने के योग्य हैं, यदि आप वास्तव सत्ता के हाथों अन्याय से परेशान हैं, यदि आप वास्तव में देश की भलाई चाहते हैं, यदि आप वास्तव में अपने बहादुर पूर्वजों और नायकों पर गर्व करते हैं, तो बहिष्कार करें- विदेशी वस्त्रों, विदेशी संस्थानों और विदेशी शिक्षा का।"[24]

प्रभावशाली राजनीतिक अभियान के लिए त्रिगुणात्मक कार्यक्रम में तीसरा तत्व**- राष्ट्रीय शिक्षा** था। तिलक ने बहुत पहले ही यह महसूस कर लिया था कि पाश्चात्य शिक्षा लॉर्ड मैकाले द्वारा शुरू की गई थी और सभी सरकारी समर्थित स्कूलों में चल रही थी, जो भविष्य के स्वास्थ्य और राष्ट्र के कल्याण के लिए हानिकारक थी। युवा पीढ़ी को न केवल उनके परिवारों और भारतीय लोगों के विशाल बहुमत के विपरीत शिक्षित किया जा रहा है, बल्कि भारत की सभ्यता की मूल्य प्रणाली से भी दूर किया जा रहा है। सरकार-समर्थित पश्चिमी शिक्षा ने युवाओं को उनके संबंधों से लेकर अतीत तक से दूर कर दिया और उन्हें नाम मात्र का भारतीय बना दिया। इसलिए पश्चिमी शिक्षा की ऐसी व्यवस्था तिलक और राष्ट्रवादियों के लिए प्रतिकूल थी। **लोकमान्य ने स्व-सहायता और आत्मनिर्भरता की नई भावना पर बल देते हुए, सस्ती और स्वस्थ शिक्षा प्रदान करने के लिए पूरे देश में राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना के लिए अनुरोध किया,क्योंकि युवा लोग सरकार द्वारा समर्थित संस्थानों में गलत नीतियों के विरुद्ध प्रतिक्रिया की आशा नहीं कर सकते थे और राष्ट्रीय शिक्षा बीसवीं सदी के भारत के लिए राष्ट्रवादी कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग बन गई।[25]**

तिलक के अनुसार **स्वदेशी और बहिष्कार निष्क्रिय प्रतिरोध की तकनीकें थी**। उन्होंने भारत में उदारवादी नेतृत्व द्वारा अब तक अपनाए गए संवैधानिक साधनों के बदले निष्क्रिय प्रतिरोध के उपयोग को प्रतिस्थापित किया। उन्होंने 1902 में सार्वजनिक घोषणा किया की आप दलित और उपेक्षित हैं, आपको प्रशासन को असंभव बनाने की अपनी शक्ति(निष्क्रिय प्रतिरोध) के बारे में जागरूक होना चाहिए यदि आप ऐसा करना चाहते हैं। हालांकि, उनके निष्क्रिय प्रतिरोध का मतलब हिंसा का सहारा लेना नहीं था, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है। तिलक एक चतुर राजनीतिज्ञ होने के कारण एक गुलाम राष्ट्र की सीमाओं के जनप्रिय प्रतिनिधि थे । वे जानते थे कि कि हम सशस्त्र नहीं हैं और सशस्त्र आन्दोलन के लिए अत्यधिक हथियारों की भी

---

[24] मोहंती, डी. के., 1997, भारतीय राजनीतिक परंपरा, मनु से अम्बेडकर तक, नई दिल्ली: अनमोल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पी-213।

[25] राम चंद्र गुप्ता, 1994, महान राजनीतिक विचारक (पूर्व और पश्चिम) आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, शैक्षिक प्रकाशक, पृष्ठ -89।

आवश्यकता है। उन्होंने हिंसा केप्रयोग से इनकार किया, हालांकि गांधी के विपरीत, वे अहिंसा के पैरोकार नहीं थे, क्योंकि वे कायरता के पंथ और कमजोरों के सत्याग्रह के पक्षधर नहीं थे। तिलक की राय में, यह साधन संवैधानिक साधनों के विकल्प के लिए एक संस्तुति थी। शिवाजी उत्सव के भाषण में शिवाजी द्वारा अफजल खान की हत्या को सही ठहराना, हमें तिलक के निष्क्रिय प्रतिरोध के संस्करण में झांकने में भी सक्षम बनाता है। **निष्क्रिय प्रतिरोध मूल रूप से बंगाल को फिर से संगठित करने के लिए शुरू किया गया था, लेकिन जल्द ही यह राष्ट्रीय उत्थान और राष्ट्रीय मुक्ति के लिए एक कार्यक्रम बन गया। साधारण शब्दों में, स्थान केंद्रित आंदोलन एक राष्ट्रीय अभियान बन गया।** [26]

स्वराज तिलक और राष्ट्रवादियों के नेतृत्व वाले पूरे कार्यक्रम और आंदोलन का कारण और औचित्य बन गया। तिलक ने महसूस किया कि स्वराज, सभी आन्दोलनों का लक्ष्य, एक नैतिक राष्ट्रीय आवश्यकता थी। उन्होंने कहा कि स्वराज की प्राप्ति भारतीय राष्ट्रवाद के लिए एक बड़ी जीत होगी। उन्होंने लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन (1916) में भारतीयों को यह मंत्र दिया कि स्वराज भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार है। उन्होंने स्वराज को नौकरशाही के बजाय लोगों के शासन के रूप में परिभाषित किया।

समाज सुधारकों के साथ तिलक के तर्क का यही सार था कि ब्रिटिश सरकार को अधिक संवैधानिक बनाने और सामाजिक सुधार उपायों को लागू करने की मांग तीव्र की जाय। तिलक ने कहा कि जब तक कि लोग कानून बनाने और सुधारों को लागू करने के लिए स्वशासन का प्रयोग नहीं करते हैं, तब तक सुधार न केवल अर्थहीन बल्कि अलोकतांत्रिक और महत्वहीन भी हैं । उन्होंने 1916 में श्रीमती एनी बेसेंट के सहयोग से होम रूल लीग की शुरुआत की, जो जल्द ही इतनी लोकप्रिय हो गई कि सरकार ने गंभीर दमनकारी उपाय अपनाए।[27]

<u>स्वराज्य दर्शन की प्रासंगिकता</u>

निष्कर्षतः लोकमान्य का स्वराज्य दर्शन एक नवीन राजनैतिक सिद्धान्त पर आधारित है- जिसमें राजनैतिक व्यवस्था का मूलाधार शासक और शासितों के परस्पर नैतिक सम्बन्धों पर अवलम्बित है। इसीलिए यह प्राचीन और नवीन राजनीतिक व्यवस्थाओं के मध्य विभाजन रेखा को समाप्त करने का काम करती है । उन्होंने आख्यापित किया कि प्राचीन **'सुराज'** एक आदर्श राज्य में नैतिक न्याय विचार पर आधारित थी, जिसमें राजा प्रजा के प्रति अपने उत्तरदायित्वों ओर कर्तव्यों को न्यायपूर्वक सम्पन्न करता था और उससे जनहित के प्रति चिन्तनशील और निष्पक्ष होने की आकांक्षा की जाती थी। आधुनिक राजनैतिक व्यवस्था जनता

---

[26] भगवान, वी. ,1976, भारतीय राजनीतिक विचारक, दिल्ली: आत्मा राम एंड संस प्रकाशन, पृ. -26-27।

[27] गुप्ता, आर.सी., 1994, महान राजनीतिक विचारक (पूर्व और पश्चिम) आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, शैक्षिक प्रकाशक, पृष्ठ -89-90।

पर आधारित है, अर्थात् **इस व्यवस्था में शासितों के सहभागिता की प्रवृत्ति है**। इस व्यवस्था में सरकार का कर्त्तव्य लोगों की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं पूर्ति कर अपनी कल्याणकारी प्रवृत्ति से उन्हे आश्वस्त करना है, इसीक्रम में स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि न केवल भारत वरन् विश्व इतिहास में अधिकतर राजवंश कुछ समय पश्चात् ही विनष्ट हो गये क्योंकि क्रम से किसी वंश में एक के बाद एक न्यायशील और जनरक्षक शासक पैदा नहीं हो सके। इसीलिए राजनैतिक व्यवस्था में स्थिरता, सरसता और एकीकृत शासन की कला किसी एक राजवंश के खजाने में नहीं होती बल्कि यह निश्चितरूप से लोकप्रिय शासकों पर अधिरोपित विश्वास में स्थित होती है। वर्त्तमान भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्त अनुपस्थित है, और कई पीढ़ियों से हमने इस राजवंश को भी परिवर्तित भी नहीं किया है, जिसकी हमें परमावश्यकता है। उन्होंने कहा-

"हम भारतीयों ने अपनी बौद्धिक क्षमता से लोकप्रिय और उत्तरदायी सरकार के महत्व को समझा है और यही कारण है कि हमारी आकांक्षाएं राज-सत्तक आदर्श से भिन्न प्रतीत होने लगी है।" [28]

स्पष्टतः श्री तिलक का स्वराज्य- दर्शन पूर्णरूपेण संवैधानिक प्रजातांत्रिक स्वशासन है जिसमें राज्य के सभी नागरिक अपने अधिकारों और कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए लोकप्रिय सरकार की स्थापना करते है। यहाँ श्री तिलक के राज्य-सम्बन्धी विचार 'सामाजिक-अनुबन्ध सिद्धान्त' से प्रतीत होते है। मुख्यरूप से वे लॉक के विचारों के समीप अधिक है क्योंकि उन्होंने व्यक्ति की गरिमा और राज्य के कार्यो अर्थात् शासक और शासितों के आपसी सम्बन्धों पर विशेषबल देते हैं और दोनों को ही विशेष उत्तरदायित्वों में आबद्ध करते है राज्य उनके लिए व्यक्तियों द्वारा निर्मित एक विधिगत संस्था है। राज्य के कर्तव्य के प्रति उनका सकारात्मक दृष्टिकोण है। वे एक कल्याणकारी राज्य दर्शन का पृष्ठपोषण करते हुए टी0 एच0 ग्रीन से प्रभावित लगते है ; दूसरी ओर वे व्यक्ति के व्यक्तिगत स्वतंत्रता को विशेष महत्व देते हैं तथा इसे मनुष्य के लिए अपरिहार्य मानते है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे मानवीय मूल्यों के आधार पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते है तथापि ध्यान देने योग्य है कि लोकमान्य सामाजिक अनुबन्ध व्यवस्था या उसके पूर्व की प्राकृतिक अवस्था की चर्चा नहीं करते हैं, न ही वे कभी किसी प्रकार के शासक-शासित या व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य अनुबन्ध की चर्चा करते है, वे सामाजिक अनुबन्ध सिद्धान्त में कल्पित राज्य विहीन समाज को एक असम्भव कल्पना मानते है। लोकमान्य का स्वराज्य एक व्यवहारिक आदर्शराज्य प्रतीत होता है जहाँ एक ओर पूर्णरूपेण शिक्षित और जागरूक लोग अपने अधिकारों और कर्तव्यों का पूर्णरूपेण पालन करते है और दूसरी तरफ लोकप्रिय शासन नैतिककता और मानवीय मूल्यों के आधार पर 'बहुजन हिताय्' अपने दायित्वों का निर्वहन करती है। इसीलिए वे प्रजातांत्रिक

[28] बाल गंगाधर तिलकः हिज राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, 1922, मद्रास: गणेश एण्ड क० (तृतीय संस्करण), पृ. - 80 .

स्वराज्य को लिंकन के समान व्यक्तियों का, व्यक्तियों के द्वारा अर्थात् उनकी सहमति से स्थापित शासन को जनता के प्राकृतिक अधिकार के रूप में स्वीकृत करते है। स्वराज्य- दर्शन से स्पष्ट होता है कि किसी भी राजनैतिक सत्ता का उद्देश्य जनकल्याण होना चाहिए और उसकी शक्ति किसी प्रकार के अन्याय और राजद्रोह को समाप्त करने के लिए है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि वे राजनैतिक स्वराज्य में सरकार और नागरिक के सम्बन्धों की मधुरता पर विशेष बल देते है। लोकमान्य, ग्रीन के समान ही इस बात की वकालत करते हैं कि **"सहमति न कि शक्ति राज्य के न्यायपूर्ण अस्तित्व का आधार है"** स्पष्ट है कि वे उदार व्यक्तिवादी लॉक के समान व्यक्ति को यह अधिकार देते हैं कि यदि व्यक्ति को विधि अन्यायपूर्ण लगे तो वह उसका विरोध कर सकता है, और इसके लिए उन्होंने जनता को क्रूर सत्ताधारी का कोपभाजन बनने को तैयार रहने को कहा। सन्त साठे ने लिखा है-

"तिलक प्रजा को विद्रोह करने का भी अधिकार प्रदान करते है राजनैतिक सत्ता द्वारा अधिनिर्मित अन्यायपूर्ण विधियों के प्रतिकार को वे न केवल जनता का प्राकृतिक अधिकार वरन नैतिक कर्त्तव्य मानते हैं तथा ऐसे सत्तासीन को वे 'प्रजा-द्रोही' की संज्ञा देते है।" [29]

लोकमान्य तिलक का वास्तविक 'स्वराज्य' जनजागरूकता अर्थात् राष्ट्रीय शिक्षा के मूलतत्व पर पूर्णरूपेण आधारित है, जिसके फलस्वरूप यदि एकबार स्वराज्य की आकांक्षा जनता के मनःपटल पर अंकित हो जाय तो इसे पुनः समाप्त नहीं किया जा सकता, सतत् जनसंघर्ष के प्रतिफलस्वरूप लोक को शनैः-शनैः राजनैतिक शक्ति का हस्तांतरण हो जाता है। स्पष्टतः राजनैतिक शक्ति प्राकृतिक क्रमानुगत घटनाक्रम है जो कभी शासक से शासित, तो कभी शासित से शासक की ओर क्रमशः प्रत्यायोजित और प्रवाहित होती है।

लोकमान्य की विचारधारा के सरलीकरण से निष्कर्ष निकलता है कि- **"वे जनमत को उदण्ड शक्ति या 'पशु-शक्ति' के स्थान पर एक 'नैतिक-मानवीय शक्ति' के रूप में प्रजातांत्रिक संवैधानिक स्वराज्य का निर्वाचक, निर्धारक और निर्माता मानते है, जो कि किसी आधुनिक सामाजिक व्यवस्था का आत्यान्तिक उद्देश्य है, जिसमें 'स्वराज्य' अन्ततः 'सु-राज' अर्थात् अच्छे प्रशासन में परिवर्तित हो जाता है।"**

वैचारिक तुलना से प्रतीत होता है कि सम्भवतः 1916 के पूर्व तक श्री तिलक योगी अरविन्द ओर विपिन चन्द्रपाल की भांति सम्राज्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत अर्द्ध स्वाधीनता की वकालत करते थे, परन्तु

[29] साठे, एस., 1994, लोकमान्य तिलक: हिज सोशल एंड पॉलिटिकल थॉट, दिल्ली: अजंता प्रकाशन, पी-89।

लखनऊ अधिवेशन में उनकी माँगे अधिक मुखर हुयी और भविष्य में पूर्ण स्वाधीनता की कल्पना पर विचारशील दिखलायी पड़ते हैं। वे परिस्थितिगत औपनिवेशिक स्वराज्य की बात करते हैं जिसमें सम्पूर्ण आन्तरिक व्यवस्था पर बिना किसी पारकीय शक्ति के हस्तक्षेप के राष्ट्र के नागरिकों द्वारा चयनित लोक प्रिय नेतृत्वकर्ताओं का शासन हो। **वे एक झटके में पूर्ण स्वतंत्रता की बात नहीं करते थे क्योंकि उन्हें पता था कि राष्ट्र सुरक्षार्थ शक्ति संग्रहित करने तक भारत को इग्लैंड से बाह्य सुरक्षा प्रतिभूति की आवश्यकता है**।

स्वराज्य-दर्शन से स्पष्ट है कि कोई भी सरकार तभी जनता पर प्रभावशाली नियंत्रण की अधिकारिणी है, जबकि वह जनकल्याण और जन इच्छाओं का व्यापक ध्यान रखती हो, साथ ही वे पाश्चात्य-जनित 'संविधानवाद' की अवधारणा को आधुनिक व्यवस्था की उपयुक्त दिशा निर्देशक के रूप मे स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं। **पाश्चात्य राजनीति शास्त्रियों के राजनैतिक दर्शन और प्राचीन हिन्दू राजदर्शन से अभिप्रेत 'स्वराज्य' दर्शन' जहाँ राज्य में प्रजातांत्रिक व्यवस्था का पक्षपोषक है, वहीं व्यक्ति के अधिकारों और कर्तव्यों का श्रेष्ठ मार्गदर्शक है।** लोकमान्य तिलक ने प्रत्येक आधुनिक राजनैतिक विचारधाराओं जैसे, मानवाधिकार एवं मानवतावाद, व्यक्ति एवं राज्य, स्वतंत्रता और समानता, न्याय और संविधानवाद, संवैधानिक प्रतातंत्र या कल्याणकारी आदि के सूत्र प्राचीन भारतीय राजदर्शन में ढूढ निकाले हैं, और भारतीय परिप्रेक्ष्य में उनकी उपयोगिता को सिद्ध किया है। अलगाववाद, जातिवाद, धार्मिकतुष्टिकरण, राजनीतिक अपराधीकरण, भाई-भतीजावाद जैसी समस्याओं का वास्तविक हल लोकमान्य का स्वराज्य सिद्धांत है। सच्चे-स्वराज्य की संकल्पना से लोकमान्य तिलक प्रत्येक राजनैतिक व्यवस्था में राजनीतिक सत्ता के न्यायपूर्ण अध्ययन का नैतिक आधार प्रदान करते हैं और उनका यह निर्देशन आज भी समय की सीमे से परे औचित्यपूर्ण है, और भविष्य में भी नैतिक आधार पर औचित्यूपर्ण और वैध रहेगा।

वे अनेकता में एकता का दर्शन करने वाले सहिष्णु तथा धर्मनिरपेक्ष मानव के रूप में उपस्थित हुए। गीता का अमर सन्देश देकर भारतीयों के मानव में सुषुप्त अर्जुन के समान निष्काम कर्म- मार्ग के प्रति प्रेरित किया। तिलक आधुनिक भारतीय लोकतन्त्र के प्रेणता है; जनशक्ति ही उनकी उपासना की देवी थी। तिलक की धारणा थी की स्वराज्य के अन्तर्गत देश का राजनैतिक ढाँचा संघात्मक होगा। तिलक के अंतिम शब्द थे **"यदि स्वराज्य न मिला तो भारत समृद्ध नहीं हो सकता। स्वराज्य हमारे आस्तित्व के लिए अनिवार्य है"।**[30]

इसप्रकार बाल गंगाधर तिलक भारतीय स्वराज्य, जिसे हम लोकतान्त्रिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टि से देखते हैं, के युगद्रष्ट थे और उनकी यह धारणा हमारी पीढ़ियों को उनका अमूल्य योगदान है।

[30]बाल गंगाधर तिलकः हिज राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, 1922, मद्रास: गणेश एण्ड को० (तृतीय संस्करण) पृष्ठ- 342.